जम्मू कश्मीर विचार मंच (दिल्ली)

भूत में भविष्य की खोज

(भाग १)

घाटी से दूर पल रहे,
बच्चों को समर्पित

जम्मू कश्मीर विचार मंच (दिल्ली)

शुभाशीष

जम्मू कश्मीर विचार मंच ने युवा पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से परिचित कराने के लिए पुस्तिकाओं की श्रृंखला निकालने का निर्णय किया है। यह जानकर प्रसन्नता हुई। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। अपने जन्म स्थान से दूर रहकर समाज की अगली पीढ़ी कहीं खो न जाए, इसके लिए विशेष प्रयत्न तो करने ही पड़ते हैं। कठिनाई भी आती है, परन्तु जो लोग दृढ़ निश्चयी होते हैं, और अपने मूल से स्वयं बन्धे रहते हैं वे सफलता को निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं। कठोरतम कठिनाई भी उनको डिगा नहीं सकती है। भगवान स्वयं उनका साथ देते हैं।

कश्मीर तो भारतीय संस्कृति का आधार है। आज किन्हीं कारणों से वहां के परिस्थिति ठीक नहीं हैं। हिन्दू समाज को वहां से निकलना पड़ा। किन्तु यह स्थिति फिर बदलेगी। जम्मू कश्मीर विचार मंच इस बदलाव का वाहक होगा, ऐसा विश्वास है।

इस राष्ट्रीय महत्व के कार्य को सफलता मिले। ऐसी प्रभु चरणों में प्रार्थना है।

विश्वनाथ
(क्षेत्रीय प्रचारक)
उतर क्षेत्र
रा0 स्वयं सं0

अपनी बात

भारत सन् 2020 तक विकसित देश होगा और 21वीं शताब्दी में मानवता का नेतृत्व एक बार फिर करेगा, यह विश्वास करने वाले गणमान्य व्यक्तियों की संख्या देश-विदेश में तेजी से बढ़ रही है। ऐसा हो भी क्यों नहीं, भारत तो स्वाभाविक रूप से विश्वगुरु है। कालचक्र की वक्रचाल के कारण हमें इतिहास का एक काला अध्याय झेलना पड़ा। प्रभुकृपा से अब अंधकार के काले बादल छट रहे हैं। सूर्योदय की लालिमा आकाश में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है। सवेरा हो रहा है। नव-प्रभात की इस बेला में हमें आलस्य और निराशा रूपी रजाई को तजकर आत्मविश्वास और आत्म-ज्ञान की गंगा-यमुना में डुबकी लगाकर आगे की यात्रा का शुभारंभ करना है। कोई सोया ना रहे। प्रत्येक व्यक्ति को जागना है।

हम अपने कश्मीर से दूर हैं तो क्या हुआ, अपने देश में ही तो हैं। हम अकेले नहीं हैं, हम हारे नहीं है और न ही हमने हार स्वीकार की है। हमने प्रतिकार किया है, करना है और कर भी रहे हैं। विस्थापन तो हमारे लिए विपत्ति के रूप में वरदान बन गया है। इस विस्थापन ने हमें जडों से हिलाया है। परन्तु इसी से हमें अपनी जड़ों को देखने का अवसर भी प्राप्त हुआ है। हम किनके वंशज है? हमारे पूर्वजों ने विश्व पटल पर कैसी अमिट छाप छोड़ी है - यह जानकरी तो हमें अब मिल रही है।

घाटी के चारदीवारी में बंद इस्लामिक मतांधता के दूषित वातावरण में तो दम घुट रहा था हमारा। हम कहीं घुट-घुट कर मर न जाए, इसीलिए तो शायद प्रभु हमें यहां ले आए। यहां राष्ट्रवाद के झोंके हमारे समाज को नया जीवन दे रहे है। संकीर्ण दीवारें टूट रही हैं, हम भारतीयता की व्यापकता में घुल-मिल रहे हैं। नए विश्वास, नए अंदाज और नई स्फूर्ति के साथ खड़े होकर अब हमें आगे का सफर तय करना है । हम याद रखें, आगे का रास्ता घाटी से होकर ही जाता है। वहां अब भी लाखों लोग एक विदेशी संस्कृति के जकड़न में हैं। परतंत्र हैं वे। रक्त हमारा ही बह रहा है -उनकी शिराओं में। वे भी संताने हैं - कश्यप और ललितादित्य की। कई पीढ़ियों से विस्मरण की जमी धूल के कारण वे इस तथ्य को समझ नहीं पा रहे हैं।

सत्य को देखकर अनदेखा कर रहे है, किन्तु -

हमने भी ठानी है, हार नहीं मानेंगे
जितना भी समय लगेगा लगाएंगे
कश्मीर के कण-कण को दासता से मुक्त कराएंगे
मां शारदा की ड्योढ़ी पर शीश अपना झुकाएंगे ।

अजय भारती

भविष्य

भविष्य बहुत कठिन है, किन्तु कहना अत्यंत सरल है। भविष्य उज्जवल है हमारा। अत्यधिक उज्जवल। हम अपने नवोदित हस्ताक्षरों की पीड़ा, भाव, और साहस को देखते है तो हृदय उल्लासित होता है। भविष्य एवं अस्मिता उनके हाथों में सौपते हुए सुरक्षा और तसल्ली की अनुभूति होती है।

सबसे उतरदायित्वपूर्ण बात हमारी पीढ़ी के लिए यही है कि एक सांस्कृतिक दिशा हम अपने भावी पीढ़ी को दें। जैसे भारत के अन्य प्रदेशों में है। बच्चे कुछ भी बनें, डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, अध्यापक, प्रशासनिक अधिकारी, प्रबन्धक कुछ भी, किन्तु उनके व्यक्तित्व में सांस्कृतिक बीज डालना हमारा कर्तव्य है। हमारी संस्कृति ही उन्हें चिंतन देगी। चिंतन अपने मूल को जानने की निरंतर जिज्ञासा से जोड़ेगा। पिछली कुछ पीढ़ियां सांस्कृतिक शून्यता में से आगे बढ़ती रही हैं, और इस शून्य के महासमुद्र में से उगती और विलीन होती रही हैं। परिणामतः उन्होंने बहुत कुछ मार्ग में ही खो दिया है। और उस शून्य के भवंर में भटक रहे हैं। संस्कृति-निष्ठ होना हमारी आदत हो जाए, हमारे संस्कार में शामिल हो जाए और हमारा समुदाय एक बार फिर कलात्मक हो उठे तो क्यों न फिर से खोई गरिमा वापस मिल जाए। क्यों न फिर चार चांद हमारे समुदाय पर लग जाए। हम फिर उसे सम्पूर्ण देश धर्म पर भी अंकित/ प्रतिबिम्बित करें।

वर्तमान पीढ़ी के माता-पिताओं पर विशेष उतरदायित्व है। समाज के दिग्गज चिंतक भी सोचें कि ऐसा कैसे हो सकता है। कैसे रक्त में पड़े दुःसंस्कार का परिष्कार और कुछ नए स्वस्थ-सुन्दर बीज फलित करें। ताकि हमारी भावी पीढ़ी न सिर्फ भारत का शीर्ष समुदाय ही रहे, अपितु अपनी भाषा, अपने समाज और अपने संस्कारों को भी उत्कृष्ट बनाने में भी ऊर्जा लगाए। सामाजिकता उनमें ऐसी आए कि नए दिग्दर्शन और नया शास्त्र गढ़े, वैयक्तिकता के पुराने लंबे रोग से छुटकारा मिले। इतने मानवीय, कलात्मक कि सब मानवमात्र के प्रति जवाबदेह रहे। फिर से आश्चर्य चकित होकर कहा जाए - वाह ! कश्मीरी हिन्दू (पण्डित)। भारत का शिरोमणि। ज्ञान का अग्रदूत। शांति का नायक। कला का ईश्वर। क्षमा

ॐ

१. हमारी मातृभूमि

हमारा देश भारत एक प्राचीन राष्ट्र है। यहां की सुविकसित सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। यहां मानव विकास की चरणबद्ध यात्रा चिरंतनकाल से चली आ रही है। यहां की संस्कृति अपने मानवीय दृष्टिकोण के चलते समस्त विश्व को आदर और श्रद्धा के बन्धन में जोड़ती रही है। यहां संघर्ष नहीं सहयोग की उपयोगिता पर बल दिया गया । कर्म को जीवन का आधार माना गया तथा सुख-दुख, ऊंच-नीच को समदृष्टि से देखने की स्थिति को आदर्श माना गया। आज हम जिस भूखण्ड को भारत कहते हैं वही हमारे देश का अंतिम भूगोल नहीं है। मौजूदा सीमाएं हमारे इतिहास के सबसे कमजोर काल-खण्ड की देन हैं। ये सीमाएं अन्तिम नहीं है, इनमें फिर से विस्तार होना है। यह राष्ट्र फिर से विश्वगुरु का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा, यह निश्चित है।

देश की सीमा

हजारों वर्षों से हमारी मान्यता रही हैः-

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम !
वर्ष तद भारतं नाम भारती तत्र संतति !!

अथार्त् समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में जो भूखण्ड है उसका नाम भारत है तथा भारती वहां की संतति हैं। इसी बात को समय-समय पर विद्वानों ने दोहराया और इसी की पुष्टि आज भी इस भूखण्ड पर व्याप्त जीवन-शैली, भूगर्भ सर्वेक्षण, पुरातत्वीय सर्वेक्षण तथा अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से होती है।

इस प्राचीन राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए जो सांस्कृतिक उपक्रम चलाए गए तथा जिन संस्थानों की रचना की गई उन सबकी अवधारणाएं लगभग एक थीं। एक ईश्वर व उसके अनेक रुपों की धारणा, विद्वान ब्राह्मणों तथा साधु-संतों का प्रत्येक स्थान पर आदर-सम्मान करना व बिना रोक-टोक के आने-जाने का अधिकार देना, राजनीति के बदले धर्म को जीवन पद्धति में प्रमुख स्थान देना हमारी परंपराओं में शामिल है। इन सबसे बढ़कर इस मातृभूमि को माता का स्थान देकर उसकी पूजा करना है। एकत्व की विचारधारा के समानान्तर यहां

विरोधी विचारों में प्रभावित होकर इस राष्ट्र को मात्र भूमि का टुकड़ा समझा और इसका शोषण किया। छोटे स्वार्थों के लिए व्यापक हित की अनदेखी की। परन्तु एक ऐतिहासिक सत्य यह भी है कि इस विरोधी विचारधारा के लोग कितने भी बलशाली क्यों न रहे हों, अन्त में उन्हें पराजय का मुंह ही देखना पड़ा। इस राष्ट्र में सदैव राष्ट्रवादी शक्तियां ही विजयी होती रही हैं।

आज से करीब 1400 वर्ष पूर्व अरब में एक असहिष्णु विचारधारा पनपी जिसने इस्लाम के नाम पर अब तक चली आ रही मान्यताओं को पूर्णतः नकार दिया तथा उन मान्यताओं को बदल कर अरबी राष्ट्रवाद के अनुकूल करना प्रारंभ कर दिया। इस्लाम को सारे संसार में स्थापित करने की कामना को लेकर इसके अनुयायी चंहू ओर फैलने लगे। जहां भी वे गए वहां सहिष्णुता, समन्वय, मानवता, संस्कृति और राष्ट्रवाद सब समाप्त हो गए। सर्वपन्थ सम्भाव, पूजा की स्वतंत्रता, समष्टि की कल्पना स्थानीय देवी देवता व मान बिन्दु, धार्मिक रीति-रिवाज और सोचने की क्षमता सब "दीने-इस्लाम" पर कुर्बान कर दिए गए। तलवार के जोर पर धर्म परिवर्तन किया गया। यह खूनी विचार-धारा भारत में भी पहुंच गई और इसने यहां पर भी विनाश लीला रची। भारतीय वीरों ने संघर्ष खूब किया, परन्तु शत्रु की कुटिलता और किसी भी नियम-कानून को न मानने की राक्षसी प्रवृति के कारण मात खाई। इस प्रकार यह राष्ट्र न केवल गुलाम बन गया, बल्कि यहां के समाज को विकास के स्थान पर अपने बचाव के लिए संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में हमें बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। देश के सर्वश्रेष्ठ विचारक, चिन्तक जो इस देश को नई दिशाओं में आगे बढ़ाते हमने खो दिए एवं शिक्षाविदों तथा हजारों वर्षों से अर्जित ज्ञान के भण्डार को नष्ट किया गया। यहां न केवल बहुत बड़ी जनसंख्या का कत्लेआम किया गया, वरन क्रूरता यह है कि इस राष्ट्र के मनिषा को ही नष्ट कर दिया गया।

फिर अंग्रेज आए। लगभग दौ सौ वर्ष तक उन्होंने इस देश का शोषण किया, परन्तु अंग्रेजों ने जो सबसे बड़ा आघात हम पर किया। वह था यहां के मानस में इस राष्ट्र के प्रति आदर और श्रद्धा समाप्त करना। मैकाले ने इस देश में एक ऐसी शिक्षा पद्धति को लागू किया जिससे इस देश के पढ़े-लिखे वर्ग का मानस बदल गया। "काला अंग्रेज" यहां का प्रभावी अंग बन गया। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता के पश्चात भी कुछ विशेष नहीं बदला। जिन लोगों ने शिक्षा की बागडोर सम्भाली वे इसी शिक्षा पद्धति की उपज थे। अतः राष्ट्र निष्ठा को यूरोपीय आंख से देखा गया जो इस धरती
से मेल नहीं खाती है। यहां के सांस्कृतिक आधार को लेकर राष्ट्र निर्माण स्वप्न बन गया। इसी कारण से देश के सामने आज एकता और अखण्डता को बचाना एक कठिन समस्या बन गया।

कश्मीर में इस समस्या ने विकराल रुप धारण किया। इस्लाम के रुप में अरबी संस्कृति के आगमन से लेकर आज तक स्थानीय जनता पर असंख्य अत्याचार किए गए। कश्मीर का

अपना इतिहास है, अपनी संस्कृति है, जो कि भारतीय संस्कृति का स्थानीय श्रेण्य ही है। कश्मीर भारतीय राष्ट्र का अभिन्न अंग ही नहीं अपितु इस संस्कृति को समृद्ध करने वाला एक प्रमुख केंन्द्र रहा है। अपने इस योगदान के कारण कश्मीर को विद्या का केंन्द्र माना जाता था। श्री आनंद कौल अपनी पुस्तक **"द कश्मीरी पंडित"** लिखते है, "भारत में पुरातन काल से ही काशी और कश्मीर शिक्षा के लिए विख्यात थे। परन्तु कश्मीर आगे निकल गया। काशी के विद्वानों की अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए कश्मीर आना पड़ता था। आज भी काशी के लोग अपने बच्चों का अक्षर ज्ञान समारोह के समय पवित्र जनेऊ सहित कश्मीर दिशा की ओर सात पग चलने को कहते है।" श्री जान मेकेंजी अपनी कृति **"हिन्दु ऐथिक्स"** में लिखते हैं, कश्मीर ने विश्व आचरणशास्त्र को अपने धर्म के सिद्धांत, शांत गुणों और कर्म के सिद्धांत से समृद्ध किया है। इसके साथ ही कर्म के सिद्धांत और आत्मा के अमरता की मान्यता को आचरण संहिता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

किन्तु कश्मीर की भौगोलिक स्थिति के कारण शेष भारत से सम्पर्क के साधन कठिन थे। अत: यहां आना या यहां से बाहर जाना सीमित रहा। यही एक प्रमुख कारण था कि पहले तो कश्मीर शेष भारत पर इस्लाम के प्रभाव के बाद भी दो सौ वर्ष तक इससे बच गया फिर जब इसलाम ने यहां कदम रखा तो यहां की जनता के साथ हो रहे अत्याचार की जानकारी शीघ्रता से शेष भारत में पहुंच नहीं सकी और इस्लाम के अनुयायियों ने इस पर पूर्ण नियंत्रण करने में सफलता भी पाई। स्थानीय
हिन्दु जनता ने संघर्ष किया, प्रतिकार किया किन्तु, इस नई शैली के आक्रमण के कारण जिसमें धर्म, राजनीति, धर्म-प्रचारक, रिश्ते सब शस्त्र के रुप में प्रयोग होते हैं मात खा गए। सिख और डोगरा शासन की अल्पावधि को छोड़ दें तो 1339 के पश्चात् जीवन के हर क्षेत्र में इस्लाम के नाम पर अरबी संस्कृति का बोलबाला रहा। विशेषकर 1931 के पश्चात अंग्रेजो़ं ने शेख अब्दुल्ला को महाराजा हरि सिंह के विरुद्ध इस्तेमाल किया तो एक बार राज सत्ता हासिल करने के पश्चात शेख (नेशनल कांफ्रेंस के संस्थापक) ने अपने वास्तविक चेहरे के उपर एक मुखौटा रखकर कश्मीर को शेष भारत से दूर दिखाकर मध्य ऐशिया के रास्ते अरब के नज़दीक दिखाने का षडयंत्र चलाया, जो आज तक जारी है।

इतिहास को परखने की वर्तमान कसौटियों को ध्यान में रखकर जो कोई प्रमाण कश्मीर को दिल्ली के नज़दीक होने की पुष्टि करता हो, उसे नष्ट किया गया और नई मनगढ़त कथाओं के माध्यम से कश्मीर को अरब के समीप या फिर स्वतंत्र प्रदेश दर्शाने की कुचेष्टा की गई। **मध्य ऐशिया कश्मीर के विद्वानों एवं धर्मप्रचारकों की क्रीड़ा स्थली रही है। अपने कठिन परिश्रम से उन्होंने भारतीय संस्कृति को सुविकसित और समृद्ध करते हुए चीन, टर्की,**

यूनान, बलख बुखारा तक पहुंचाया, जिसके प्रमाण आज भी इन स्थानों पर उपलब्ध है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं रहा कि कश्मीर इन स्थानों के अधिक निकट और शेष भारत से दूर था, जैसा कि प्रमाणित करने का प्रयास हो रहा है। यह वास्तव में भारत को विखंडित करने का एक वृहद् षडयंत्र है। राजनैतिक पृथकतावाद इस वृहद् षड़यंत्र का महत्वपूर्ण अंग है। कट्टरपंथी इस्लामी आतंकवाद के अमानवीय अत्याचार का शिकार बनकर 1989-90 में एक बार फिर हिन्दु का घाटी से निष्कासन तथा उनकी वापसी के सारे मार्ग बंद करना इस षड़यंत्र की एक मुख्य कड़ी है। इसको देखते हुए हमारा कर्तव्य है कि कश्मीर के वर्तमान घटनाक्रम के साथ-साथ हम लोग उसके सच्चे इतिहास को भी जाने और अपनी अगली पीढ़ी को भी इसका निरंतर ज्ञान कराएं।

ॐ

२. कश्मीर अनादि से ....

कश्मीर अति प्रचीन काल से ही संसार के आकर्षण का प्रमुख केंन्द्र बना रहा है। यह बात कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता के कारण हो या फिर यहां की प्रचुर वन-सम्पदा के कारण। यहां के शीतल पवन के झोंके हो या हिम मंडित पर्वत-शिखर, केसर की क्यारियां हो या यहां का जनमानस। कश्मीर प्रत्येक रुप में किसी को भी किसी समय भी अपनी ओर आकर्षित करके प्रभावित करता रहा है। इन्हीं कारणों से कश्मीर को भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा जाता रहा है। जैसे नन्दन वन, धरती का स्वर्ग, शारदा पीठ, शक्ति पीठ, ऋष-वअर, सतीसर आदि।

आरम्भ से ही कश्मीरवासियों को कठिन स्थितियों से जूझना पड़ा, जिसके कारण उन्हें उत्कृष्ट प्रदर्शन करने की परंपरा चलानी पड़ी। यह अचरज की बात नहीं है कि कश्मीर ने अध्यात्म, कला, वीरता, राजनीति, इतिहास लेखन, चिकित्सा ज्ञान, गणित, अभियांत्रिक, साहित्य तथा अन्य क्षेत्रों में भी मानव संसार को श्रेष्ठ उपहार प्रदान किए।

इतिहास के स्वर्णिम अध्यायों के साथ कश्मीर ने काल चक्र की वक्रताल को भी झेला है। विकृत-आततायियों की गिद्ध दृष्टि कश्मीर पर सदैव गड़ी रही। राक्षसी प्रवृत्ति के अनुयायी ने इस मनोहर भूखण्ड को अपने भोग और विलास के लिए प्रयुक्त किया है। समय-समय पर यहां ऐसी विनाश लीलाएं रची गई कि यहां के निवासियों को यह स्थान छोड़कर बार-बार जाना पड़ा, परन्तु हर बार ये लोग असंख्य कष्ट झेलकर नानाविध वेदनाओं को सहते हुए भी अपनी संस्कृति और जीवन मूल्यों की रक्षा करते हुए वापस कश्मीर लौटते रहे हैं तथा जीवन की नई ऊँचाइयों को प्राप्त किया है। उत्थानोपतन तथा सुख-दुख की यह श्रृंखला आज तक जारी है। इसमें आज भी कोई संदेह नहीं है कि कश्मीर की यह प्रताड़ित जनता फिर अपने मूल स्थान पर लौटेगी और मानवता के कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करेगी।

कश्मीर का ज्ञात इतिहास गौरवशाली है, इसका जन्म ही पराक्रम का परिणाम है। नीलमत पुराण तथा पंडित कल्हण की राजतरंगिणी तथा अन्य संबंधित साक्ष्यों से जो तथ्य सामने आते हैं उसके अनुसार कश्मीर की कथा कुछ इस प्रकार से है। सूर्य को एक राशि से निकलने में एक मास का समय लगता है। ऐसे दो मास का एक ऋतु तथा तीन ऋतुओं का एक आयन होता है। दो आयनों का (उतारायण और दक्षिणायन) एक वर्ष होता है। 4 लाख 32 हजार वर्षों का एक कलयुग होता है, दो कलयुगों का एक द्वापर और तीन द्वापर युगों का एक त्रेता तथा त्रेता युगों का एक कल्प बनता है, चतुर्थयंगों का एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तर की समाप्ति

पर प्रलय अर्थात सर्वनाश होता है। सारा विश्व जलमग्न हो जाता है और फिर मनु द्वारा सृष्टि रचना होती है।

वर्तमान वैवस्वते मन्वन्तर के उपरांत दक्ष ने मारीचय के पुत्र कश्यप को अपनी 13 पुत्रियां प्रदान की। इनमें आदित्य के पुत्र देवता, दिती के पुत्र दैत्य, दनायुष के पुत्र वत्र, सुरभि के भद्र, प्रवा से अप्सरन, कालकल्प तथा कालकेया काला के पुत्र माने जाते है। दनु का पुत्र दानव तथा क्रोधा की दस पुत्रियां हुई। इस प्रकार नाग जाति कद्रों के तथा पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़ तथा अरुण विनाता के वंशज है। कद्रों तथा विनता के आपस में बैर होने के कारण एक दूसरे से लड़ते रहते थे। एक बार उच्चश्रव नामक घोड़े को जल से निकलते देखकर उसके रंग पर विनात और कद्रों ने शर्त लगाई। हारने पर एक दूसरे के दास बनने का निश्चय किया तथा इसको अपने पुत्रों पर भी लागू होने के लिए अपने-अपने पुत्रों को मनाया। विनात हार गया। किन्तु गरुड़ ने इन्द्र की सहायता से उसे दास बनने से बचाया। गरुड़ ने नाग भक्षक का वर इन्द्र से प्राप्त किया। वह नागों को समाप्त करने में लगा। नागों का भक्षण देखकर वासुकि नाग ने जर्नादन से रक्षा की गुहार की। इस प्रकार काफी विनय-प्रणय करने के पश्चात् भगवान ने भयभीत वासुकि को सतीदेश(सतीसर) में रहने के लिए कहा, जहां शत्रु उनको कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। साथ में नील को राजा बनाने का निर्देश भी दिया। वासुकि ने ऐसा ही किया तथा अपनी जाति के साथ भयमुक्त होकर रहने लगे।

एकबार इन्द्र अपनी पत्नी शचि के साथ सतिसर में भ्रमण कर रहा था कि वहां दैत्यराज संग्रह आ.गया। उसने काम वासना से वशीभूत होकर शचि को अपमानित करने की चेष्टा की, इसपर इन्द्र ने उसका वध किया। इन्द्र के जाने के पश्चात् नागों ने संग्रह दैत्य की लाश के पास एक बच्चे के देखा, उसे राजा नील के पास लेकर गए। नील ने इसे अपने संतान के समान पाला। जल के पास प्राप्त होने के कारण उसका नाम जलोद्भव रखा गया। जलोद्भव ने पितामह की अराधना करके तीन वर

प्राप्त किए। यह वर थे जल में अमरत्व (न मरने का) का वरदान, माया शचि की प्राप्ति तथा अतुल्य बल। इन तीनों वरदानों को प्राप्त करने के पश्चात् जलोद्भव ने आस-पास रहने वालों को इतना कष्ट दिया कि वे वहां से अन्य प्रदेशों में चले गए। इसमें दार्वाभिसार गंधार, जहुण्डर, शकान, खसान, तडगनान, माण्डवान तथा अन्तगीर व बाहीगिरी के लोग शामिल थे। उस समय कश्यप मुनि तीर्थ यात्रा पर निकले थे। वे पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष हयशीर्ष, वाराहपर्वत, पंचनद, केदार बद्रीनारायण, सुगंधम, कलिकाछम, अगस्तयाश्रम, जम्बमार्ग वाराणसी, गंगादेवी, यमुना, सरयु, सरस्वती, गोदावरी, वैतारणी, गोमती, नर्मदा, कावेरी, बाहुदा, वेदस्मृति, ब्राह्मणी, गौरी, कम्पना, तस्मा, गंगासागर, तथा सिन्धुसागर संगम के दर्शन कर चुके थे।

राजा नील तीर्थ यात्रा कर रहे कश्यप मुनि को कनखल में मिलने गया तथा उसने अपने प्रदेश के तीर्थ स्थानों की यात्रा करने की प्रार्थना की। कश्यप मुनि ने नील का अनुरोध स्वीकार किया तथा इस तरफ आ गए। पर वहां किसी को न देखकर उन्होंने इसका कारण नील से पूछा। राजा नील ने जलोद्भव के बारे में बताया। कश्यप ऋषि ने जब यह करुण गाथा सुनी तो उन्होंने अपने तपो बल से परमेश्वर का आह्वान किया। जर्नादन ने कश्यप का नाद सुन लिया और उन्हें जलोद्भव का अंत करने का वचन दिया। देवताओं द्वारा उसके वध की तैयारी की जानकारी मिलते ही जलोद्भव पानी में छिप गया। यह सोचकर कि पानी में उसे कोई मार नहीं सकता। मधुसूदन ने राक्षस के भ्रम को तोड़ा और पहाड़ी को चीरकर संतीसर के पानी को निकलवाने का रास्ता बनवाया। पानी वेग के साथ बाहर निकला। पानी के समाप्त होते ही जलोद्भव को सामने आना पड़ा। भगवान विष्णु ने अन्य देवताओं के साथ मिलकर इस दुष्ट राक्षस का अंत किया। कश्यप मुनि ने उनका धन्यवाद किया और इस नए उभरे भूखण्ड पर पिशाच और मनुष्यों को नागाओं के साथ बसाने की योजना बनाई।

नीलमत पुराण में वर्णित इस मत का उल्लेख कल्हण की राजतरंगिणी में भी है, और ह्यूनसांग के यात्रा वृत में भी। इस कथा(सतीसर होने का) का समर्थन ताजा भौगोलिक शोध भी करता है। कश्मीर की वर्तमान भौगोलिक स्थिति भी इस कथन की पुष्टि करता है। घाटी का स्वरुप, चारों ओर से उंचे पर्वत तथा बीच में एक बड़ा क्षेत्र भी दर्शाता है कि यहां झील हो सकती थी। भू-वैज्ञानिकों के शोध से मालूम हुआ है कि घाटी में उपस्थित करीबे तथा इन करीबों पर पाई जाने वाली मिट्टी, रेत, तथा अन्य वृक्ष त्यादि भी इस बात को प्रमाणित करते हैं। 1885 ई0 में एक जबरदस्त भूकंप के पश्चात् लारिडोरा (बारामूला) में 1500 फुंट उंचाई पर प्राप्त सिंघाड़ों का होना इसी का प्रमाण माना जाता है। पानी में उगने वाला सिंघाड़ा 15 हजार फुट की उंचाई पर अन्यथा कैसे उग सकता है।

३. ज्ञात इतिहास

कश्मीर का इतिहास महाभारत काल से शुरु होता है। गोनंद प्रथम यहां का राजा माना जाता है। वह जरासंध का रिश्तेदार था और बलभद्र के हाथों मारा गया। उसका पुत्र दामोदर भगवान कृष्ण से बदला लेने के लिए गन्धार गया, जहां श्री कृष्ण एक स्वयंवर में शामिल होने के लिए गए हुए थे। दामोदर भी कृष्ण के हाथों मारा गया। श्रीकृष्ण ने दामोदर की पत्नी यशोवती को राज्य सिंहासन पर बिठाया । दामोदर के मृत्यु के समय रानी यशोवती गर्भवती थी तथा कुछ समय बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम गोनंद द्वितीय रखा गया। महाभारत युद्ध के समय गोनंद द्वितीय काफी छोटा था। इसी कारण कश्मीर के राजा का इस युद्ध में भाग लेने का वर्णन नहीं आता है। इसके बाद 44 राजा हुए। मगध सम्राट अशोक ने (इ0 पूर्व. 272-232) कश्मीर पर अपना अधिकार जमाया। इसके बाद तीन शताब्दियों तक कश्मीर के किसी प्रभावशाली राजा का वर्णन नहीं आता। इस समय कुषाणों ने कश्मीर पर अपना वर्चस्व स्थापित किया। कुषाण तुर्क थे। इनमें कनिष्क सबसे योग्य एवं शक्तिशाली था। वह बौद्ध मत का अनुयायी बना। इसी समय कश्मीर में बौद्ध मतावलंबियों का विशाल सम्मेलन हुआ। बारामुला के पास आज का कानिसपुर कनिष्क द्वारा बनाया गया कनिष्कपुर ही था। कनिष्क के बाद अनेक राजा हुए, जिनमें अभिमन्यु, विभीषण तथा इन्द्रजीत शामिल हैं।

छठी शताब्दी में (515 ई.) हून जाति ने कश्मीर पर विजय प्राप्त की। इसमें मिहिरकुल "क्रूर शासक" के रुप में विख्यात है। इसी मिहिरकुल ने पीर पंचाल से सौ हाथियों को केवल इसलिए नीचे गिराया क्योंकि उसको एक हाथी के अचानक गिर जाने से तथा उसकी भयानक चिंघाड़ सुनने से रोमांच हुबा था। कश्मीर की जनता के प्रभाव से मिहिरकुल का मानस अन्त में बदल गया और वह शिव उपासक हो गया। पहलगांव का मामलेश्वर मंदिर इसी ने बनवाया था। इसी समय मेघवहन नामक एक राजा हुआ जो काफी प्रतिभाशाली था। उसने पशुवध पर प्रतिबंध लगाया और निषेधाज्ञा को प्रभावी बनाने के लिए काफी प्रयत्न भी किए। मेघवहन के पश्चात कार्कोटा का 254 वर्षों का शासन चला। इसका संस्थापक राजा दुर्लभवर्धन था जो 625 ई. तक सिंहासन पर बैठा। इसी समय चीन का प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसांग (631 ई.) कश्मीर आया। इस वंश का एक और शक्तिशाली और दूरदर्शी राजा था-चन्द्रपीडा। चन्द्रपीडा ने 713 ई. में चीन के राजा के साथ सन्धि करके अरब आक्रमणकारियों को परास्त किया। चन्द्रपीडा के न्याय का वर्णन एक रोचक घटना करती है। कहते हैं एक विशाल मंदिर के निर्माण के लिए जो स्थान कर्मचारियों ने उपयुक्त बताया वह किसी चर्मकार का था। चर्मकार ने वहां से अपनी झोपड़ी

हटाने से मना किया। जब राजा ने यह सुना तो उसने तुरंत अपना आदेश वापस ले लिया । फिर स्वयं आकर उस चर्मकार से निवेदन किया और मना लिया। उस चर्मकार से राजा ने जबरदस्ती नहीं की।

इसके पश्चात् (721-761 ई.) सम्राट ललितादित्य मुक्तापीडा ने कश्मीर का शासन सम्हाला। इसकी सैनिक योग्यता की तुलना नेपोलियन से की जाती है। इसी ने मार्तण्ड का विश्व प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर बनवाया। तत्पश्चात अवन्तिवर्मन (855-883) जयसिंहम् (1127-1155 ई.) तक शासन करते रहे। सम्राट अवन्तिवर्मन कला का उपासक था उसने युद्ध के स्थान पर विकास और शांति को प्राथमिकता दी। इसी काल में सुरया नाम का एक इंजीनियर हुआ जिसने जनता का सहयोग लेकर
घाटी को बाढ़ से बचाया। सोपोर इसी के नाम से बसा शहर है। अवन्तिवर्मन के पश्चात् उसका पुत्र शंकरवर्मन फिर गोपालवर्मन और 950 ई. में क्षेमगुप्त सिंहासन पर बैठा। परन्तु उसकी पत्नी द्दिा ने राजा को प्रभावित करके पच्चास वर्षो तक कश्मीर का शासन सम्हाला। पहले पति और फिर पुत्र अभिमन्यु उसके बाद पौत्र भीमगुप्त को राजा घोषित करके स्वयं नियंत्रण किया। वृद्धावस्था में द्दिा ने अपने भाई उदय राज के युवा पुत्र संग्रामराज को शासन सौंपा। इसी संग्रामराज ने महमूद गजनवी को दो बार पराजित किया। संग्रामराज महमूद की आक्रमण शैली को समझता था। धोखा, फरेब, देवस्थानों को तोड़ने, बलात्कार जैसे कुकृत्य करने वाले महमूद गजनवी के आक्रमण की गंभीरता को समझते हुए उसने पूरे कश्मीर की सीमाओं पर पूरी चौंकसी रखने का आदेश दिया। सीमावर्ती क्षेत्रों के लोगों को विशेष रुप से प्रशिक्षित किया गया ताकि पूरी सतर्कता से प्रत्येक परिस्थितियों का सामना कर सके। अलबरुनी ने कश्मीर की सीमाओं की सुरक्षा-व्यवस्था में लोगों के योगदान की चर्चा की है। वह लिखता है--"कश्मीर के लोग अपने देश की वास्तविक शक्ति के विषय में विशेष रुप से उत्कंठित रहते हैं, इसलिए वे कश्मीर के प्रवेश द्वार और उनकी ओर खुलने वाली सड़कों की ओर सदा मजबूत निगाह रखते हैं। फलस्वरूप उनके साथ कोई वाणिज्य-व्यापार कर पाना बहुत कठिन हैं -- इस समय तो वे किसी अनजाने हिन्दू को भी प्रवेश करने नहीं देते। दूसरे लोगों की तो बात ही छोड़िए ।"

संग्राम राज के पश्चात उसके पुत्र हर्ष ने 21 वर्ष तक कश्मीर पर राज्य किया। वह कवि था। साहित्य क्षेत्र में उसके अनेक प्रकार की सुविधाएं प्रदान की। उसने सेना और प्रशासन का पुणर्गठन करते हुए एक अदूरदर्शी कार्य किया जिसका असर बाद के इतिहास पर हानिकारक हुआ। कल्हण के अनुसार -- "हर्ष ने मुसलमानों की सूचि बनाई और सेना को नए ढ़ग से गठित किया। हर सौ सैनिकों के दस्ते को एक मुस्लिम सेनापति के अधीन कर दिया, ताकि उसके सैनिकों के लिए विद्रोह करना या समर भूमि से भाग जाना असंभव हो जाए। हर्ष के बाद

मुसलमान एक श्रेणी में होकर उभरे। लम्बी अवधि तक उन्होंने देश के शासकों के साथ सम्पर्क बनाए रखा और उन्हें लड़खड़ाते सिंहासनों पर बनाएं रखने में सहायता दी। युद्ध के गुणों तथा शाही संरक्षण ने मुसलमानों को राजनैतिक-क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण अंग बना दिया।" सन् 1128 से 1150 तक कश्मीर पर राजा जयसिंह का राज रहा। दृढ़ निश्चयी जयसिंह ने अनेक कठिनाइयों एवं संघर्षों का सामना सफलतापूर्वक किया। भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर मुस्लिम शक्ति के बढ़ते प्रभाव से वह चिंतित था, उसने इन खतरों के सम्भावित परिणामों को ध्यान में रखते हुए कश्मीर से लगते अनेक राज्यों से इस विषय में वार्तालाप किया। राजा जयसिंह के पश्चात् लगभग 150 वर्ष तक कश्मीर के राज सिंहासन पर एक के बाद एक कई राजा पदासीन हुए।

सन् 1301 में सहदेव शासक बना। इसने हर्ष की भांति बाहरी तत्वों को प्रशासन में घुसने की छूट दे दी। उसी समय तिब्बत का एक बागी राजकुमार रिंचन और स्वात(तुर्किस्तान) से एक मुस्लिम सरदार शाहमीर सहदेव के दरबार में आया। सहदेव ने इन दोनों को प्रशासन में ऊंचें पद पर नियुक्त
कर दिया। उन्हीं दिनों, तातार सेनापति डुलचू ने 70,000 शक्तिशाली सैनिकों के साथ कश्मीर पर आक्रमण किया। राजा सहदेव किस्तवाड़ की ओर भाग गया। डुलचू ने हजारों लोंगो को मार दिया, इससे भी अधिक गुलाम बनाए गए। कस्बों को आग लगा दी गई। खड़ी फसलें नष्ट कर दी गई। यहां आठ महीने रहने के बाद डुलचू काफी ब्राह्मणों को दास बनाकर ले जा रहा था। परन्तु देवसर दर्रा पार करते हुए बर्फानी तूफान से उसकी सारी सेना और दास काल के ग्रास बन गए। इस आक्रमण और राजा के भाग जाने से पूरे क्षेत्र में फैली अराजकता का लाभ उठाकर प्रधान सेनापति रामचन्द्र ने राज्य पर अधिकार जमा लिया। परन्तु तिब्बत से भागे रिंचन ने धोखे से उसका वध कर दिया और स्वयं राजा बन गया। रामचन्द्र की मृत्यु से कश्मीर की प्रजा को आघात पहुंचा, विद्रोह भी हुआ। परन्तु रिंचन ने रामचन्द्र की पुत्री कोटारानी से विवाह करके इससे शांत कर दिया। कोटा रानी के प्रयत्नों से रिंचन ने हिन्दू धर्म अपनाने का निर्णय किया पर सामाजिक नेताओं ने उसे हिन्दू धर्म में स्वीकार नहीं किया। प्रतिक्रिया स्वरूप रिंचन ने इस्लाम कबूल किया। "इस प्रकार रिंचन कश्मीर का पहला धर्मान्तरित मुस्लिम शासक मलिक सदरुद्दीन हुआ।" शाहमीर जो प्रशासन पर काफी हावी हो गया था और सत्ता केन्द्र के काफी नजदीक था, ने रिंचन को मुसलमान बनाने में बड़ी भूमिका निभाई। रिंचन बौद्धमत का अनुयायी था। परन्तु कश्मीर में उस समय हिंदुत्व का प्रभाव था। हर्ष के समय मुस्लिम सम्प्रदाय का पर्दापण हो चुका था। इसलिए रिंचन की मनःस्थिति को समझते हुए शाहमीर ने उसको मुसलमान बनाने का षड्यंत्र रचा, जिसमें वह सफल भी हो गया। 1320 ई. में रिंचन की मृत्यु हो गई। अंतिम समय पर उसने अपनी पत्नी और पुत्र हैदर को मंत्री बने शाहमीर के हवाले किया। रिंचन की मृत्यु

बार उड्यनदेव तिब्बत भाग गया। परन्तु कोटारानी ने अपने जोशीले आह्वान से कश्मीरियों की स्थानीय देशभक्ति को जाग्रत किया। हजारों लोग कोटारानी के झण्डे तले जमा हो गएं और उन्होंने तातारों के दांत खट्टे कर दिए। कश्मीर संकट मुक्त हो गया।"

शक्तिशाली, कूटनीतिज्ञ, व्यवहार कुशल राजनीति में धुरन्धर महारानी कोटा की प्रशासन पर पकड़ मजबूत हो गई। उसने प्रजा के विकास और सुख सुविधा की ओर ध्यान दिया। न्यायालयों की व्यवस्था की। मंत्रिमंडल का पुनर्गठन किया। योग्यता और शौर्य का प्रदर्शन करने वालों को राजकीय सम्मान किया। उड्यनदेव जो आक्रमण के समय भाग गया था, अचला के मारे जाने की खबर सुनकर वापस आ गया। आदर्श नारी के चरित्र को संजोए कोटारानी ने उसका स्वागत किया। यह सब देखकर शाहमीर को अपने उद्‌देश्य में बाधा नजर आने लगी। अतः उसने उड्यनदेव को रानी के विरुद्ध भड़काना शुरु किया। इसी बीच 1338 ई. में उड्यनदेव की मृत्यु हो गई। अपना संयम खोये बिना रानी ने पांच दिन तक इस समाचार को गुप्त रखा तथा राज्य को सुरक्षित रखने के सभी उपाय किए। महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अपने विश्वस्त अधिकारियों को नियुक्त किया। अपने निकटतम सहयोगी भिक्षण भट्ट को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। लावण्य नाम के एक प्रभावीशाली नेता को भी मंत्री नियुक्त किया। यह "लावण्य" सम्भवतः इसी नाम की प्रभावशाली जनजाति या कृषक ग्रामीण समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहा था। आज की "लोन" जाति इनके वंशज हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज के कुपवाड़ा क्षेत्र में यह वर्ग प्रभावशाली रहा होगा।

उड्यनदेव की मृत्यु के पांच दिन बाद जब यह समाचार फैल गया तो उसी समय कोटारानी ने अपना राजतिलक करवा लिया। शाहमीर हाथ मलता रह गया। कुछ समय पश्चात् जब कामराज क्षेत्र में भयानक अकाल पड़ा और कोटारानी राजधानी से दूर उस क्षेत्र में प्रवास पर थी, शाहमीर ने भिक्षण भट्ट का धोखे से वध किया और श्रीनगर पर कब्जा किया। कोटारानी को जब इसका समाचार मिला तो उसने जयपुर(आज का अन्द्रकोट) नामक स्थान पर सेना को एकत्र करना प्रारंभ किया। शाहमीर ने रानी को गिरफ्तार करने के लिए जयपुर की ओर कूच किया। रानी किले में फंस गई। अपने को घिरा देखकर जब रानी को सारी याजनाएं विफल होती नजर आई तो उसने अपने जीवन की अंतिम कूटनीतिक चाल चलने का निर्णय किया। उसने शाहमीर को राजगद्दी और उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेज दिया। शाहमीर ने प्रसन्नतापूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और रानी को अपने महल में आने का निमंत्रण दिया। रानी ने पूर्ण श्रृंगार किया और नई नवेली दुल्हन सी शाहमीर के महल में जा पहुंची। शयनकक्ष में पहुंचते ही रानी ने आभूषणों में छिपाएं खंजर से शाहमीर पर वार करना चाहा परन्तु उस तक रानी का वार पंहुच नहीं पाया। अपनी चाल को विफल होता देख इस महान देवी ने आत्म बलिदान किया और विधर्मी शाहमीर को शरीर सौंपने के स्थान पर उसी खंजर से अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। इसके बाद शाहमीर कश्मीर के सिंहासन पर बैठने वाला पहला मुसलमान सुल्तान बना । यहां से प्रारंभ हुई मतांधता की खूनी कहानी, धर्मान्तरण का मर्मान्तिक दर्द जिसकी चीखों के बारे में एक पक्षीय बात लिखने वाले मुस्लिम इतिहासकारों को भी अपने पन्नों पर उतारना पड़ा। शाहमीर द्वारा कश्मीर पर आधिपत्य जमाने के बाद आज तक कश्मीर में इस्लाम के नाम पर अमानवीय बर्बरतापूर्ण कृत्य किए जा रहे हैं।

४. नीलमत पुराण

नीलमत पुराण एक पुरातन संस्कृत ग्रंथ है, जिसमें कश्मीर के बारे में बहुत अधिक जानकारी है। कश्मीर के अनादि काल, यहां के तीर्थ स्थलों, परम्पराओं एवं रीतिरिवाजों तथा यहां के रहने वाले लोगो के बारे में यह ग्रंथ हमें जानकारी देता है। जनता के अराध्य देवों तथा उनको समर्पित पूजा पद्धति के साथ-साथ यहां के समाजिक जीवन पर भी नीलमत पुराण प्रकाश डालता है। नीलमत पुराण का उल्लेख कल्हण कृत राजतरंगिणी में हैं, किंतु स्वयं ग्रंथ के बारे में पहली बार 1877 में, तब के मुंबई शिक्षा विभाग के प्रो0 जी बूहलर ने नीलमत पुराण को जानकारी का खदान बताया। इस ग्रंथ को 1924 में कंजीलाल तथा जाडू ने छपाया तथा 1936 में ब्रीसे ने इसका सम्पादन किया। विभिन्न लेखकों ने समय-समय पर सरसरी तौर पर नीलमत पुराण का या तो उल्लेख किया या फिर इसके कुछ अंशों को उद्धृत किया हैं। परन्तु ग्रंथ की पुनः रचना का श्रेय डा0 वेद कुमारी घई को जाता हैं।

डा0 घई ने नीलमत पूराण पर शोध कार्य करके इस ग्रंथ को दो खण्डों में प्रकाशित किया। प्रथम खण्ड में सांस्कृतिक और साहित्यक चित्रण है तथा द्वितीय खण्ड में संस्कृत श्लोंको के साथ उनका अंग्रेजी में अनुवाद भी किया हैं। अपने इस पुस्तक का परिचय देती हुई डा0 वेद कुमारी घई लिखती है, जिस प्रकार वायुपुराण, मार्कण्डेयपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्मपुराण आदि के नाम इन पूराणों के रचियताओं के नाम पर हैं वैसे भी नीलमत पुराण का नाम भी इस ग्रंथ के लेखक नील द्वारा चन्द्रदेव को सुनाएं गए मुख्य अंशों के आधार पर है।

नीलमत पुराण के आरम्भ में जनमेजय वैशम्पायन से पुछते हैं कि "कश्मीर" एक प्रमुख स्थान होने के बाद भी यहां के राजा ने महाभारत युद्ध में भाग क्यों नहीं लिया। इस पर वैशम्पायन, गोनंद और ब्रहदश्व के लिए इस विषय पर हुई बातचीत को दोहराते हुए बताते है कि कश्मीर का राजा गोनंद-प्रथम जरासंध का रिश्तेदार थे। जरासंध और कृष्ण के युद्ध में बलभद्र द्वारा गोनंद का वध होता है। उसका पुत्र दामोदर इसका बदला लेने के प्रयास में मारा जाता है। फिर कृष्ण दामोदर की गर्भवती विधवा यशोधरा का राज्याभिषेक कारवाता हैं। इसी समय महाभारत का युद्ध होता हैं। अतः उसमें कश्मीर का राजा सम्मिलित नहीं होता हैं। इस वार्ता में सतिसर झील से कश्मीर की उत्त्पति की कहानी का वर्णन आ जाता हैं।

नीलमतपुराण को लिखने के समय का जहां तक प्रश्न हैं तो यदि बुद्ध को विष्णुवतार के समय को 550 ई. माने तो नीलमतपूराण छठीं और आठवीं शताब्दी के बीच लिखा गया हैं। नीलमतपूराण के अनुसार कश्मीर के लोग अपनी भूमि को बेहद प्रेम करने वाले श्रद्धालु प्रवृति के हैं। अनेक उत्सवों को मनाने वाले कश्मीर के समाज में नारी को सम्मान प्राप्त था। नागा "पिशाच, दारखास, अभिसार, खासा टगंना, मान्दवा" इत्यादि जाति के लोग रहते थे। इस समय के सामाजिक व आर्थिक रचना का भी वर्णन आता हैं। नीलमतपुराण में एक बात जो स्पष्ट रुप से उभर कर आती है वह यह कि शेष भारत और कश्मीर का निकट का सम्बन्ध था। कहा जा सकता है कि कश्मीर भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख और सशक्त केन्द्र था। नीलतम से हमें पता चलता है कि उस समय कश्मीर में विभिन्न अवतारों पर विश्वास था। "मत्स्य-क्रर्मी हंस, नरसिंह, वामन रामावतार, कृष्णावतार" की जानकारी थी। विष्णु तथा शिव के विभिन्न रुपों के लिए तो अनेक मंदिर समर्पित थे।

५. राजतरंगिणी

राजतरंगिणी अर्थात "राजाओं का प्रवाह" कश्मीर तथा शेष भारत के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला प्राचीन संस्कृत ग्रंथ है। इसका महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है, क्योंकि यह प्राचीनतम व पूर्ण होने के साथ ही आज के इतिहास लेखन की कसौटी पर भी खरा उतरता है। यह ग्रंथ लगभग 4000 वर्ष के काल के बारे में जानकारी देता है। राजतरंगिणी को पं0 कल्हण नामक एक कश्मीरी ब्राह्मण ने लिखा है। वैसे श्रीवर और जोनराज नामक दो अन्य कश्मीरी पंडितों ने भी राजतरंगिणी लिखी है। परन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण कल्हण कृत राजतरंगिणी ही मानी जाती है। उसने 1148-49 में इसकी रचना की।

कल्हण पं0 चंपक का पुत्र था जो कश्मीर के तत्कालीन शासक हर्ष का मंत्री था। भारतीय परंपरा का पालन करते हुए कल्हण ने अपने बारे में कुछ नहीं लिखा। उसका परिचय तो उसकी रचना ही है, जो इतिहास है, काव्य है, तथा साहित्यक रचना हैं। ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ कल्हण ने कश्मीर की जीवन-शैली, नदी-नालों व झरनों, फूलों भरी घाटियों, हिमंडित पर्वत शिखरों का ऐसा सजीव चित्रण किया है कि जिससे शताब्दियों पुराना व समय दोबारा जीवंत हो उठता है और पढ़ने वालों को अनुभव होता है-जैसे वह घटना क्रम उनके आंखों के सामने घट रहा हो। राजतरंगिणी हमें श्रीनगर बसाने, उसका नाम, शारिका पर्वत व गोप पर्वत (हारी पर्वत तथा शंकराचार्य) जैसे प्रमुख स्थलों की जानकारी भी देता है। मार्तण्ड के सूर्य मन्दिर सहित अन्य नगरों, मंदिरों, बौद्ध विहारों और स्तूपों की चर्चा भी इसमें की गई हैं। राजकुमार व राजमहलों से लेकर साधारण डूम्ब और चण्डाल तक, ब्राह्मण अस्पर्श प्रत्येक पहलु कों इसमें यथोचित रुप से उजागर किया गया हैं।

कल्हण ने राजतरंगिणी में भारतीय संस्कृति के शाश्वत सिद्धांतों तथा प्रमुख घटनाओं का उपयोग बार-बार करके इन पर अपनी आस्था और लगाव दर्शाया हैं। समुद्र मंथन, गंगावतरण, सहिष्णुता, कर्म पर विश्वास तो मात्र उदाहरण मात्र हैं। कश्मीर में शैवमत का विशिष्ट दर्शन नवीं शताब्दी में विकसित हुआ, शिव को सृजन एवं विनाश की शाश्वत प्रक्रिया का स्वरुप मानना। शिव को भैरव तथा काल के साथ प्रेम का प्रतीक कहना। शिव के साथ शक्ति को अर्द्धनारेश्वर जो विनाश एवं सृजनात्मक तत्त्वों को एक साथ उपस्थित होने का आभास दिलाता हैं, इस दर्शन का सार हैं। मृत्यु को जीवन का आधार मानने वाला यह सिद्धांत कल्हण की लेखनी तथा प्रत्येक तरंग के आरम्भ में तथा अंत में श्लोक रुप में विद्यमान हैं।

कल्हण को सृष्टि रचना में दिलचस्पी नहीं थी। उसे तो एक निश्चित कार्य करना था। अतः वह 1184 ई.पू. से लेखन कार्य आरम्भ करता है, और इससे भी 1266 वर्ष पीछे के काल का जिक्र

करता है और 52 लुप्त राजाओं की चर्चा करता हैं। परन्तु वह इनकी कोई निश्चित तिथि नहीं लिखता। इसी कारण पहले तीन तरंगों में कोई तिथि नहीं है। 813-14 ई. से लगभग निश्चित तिथि दी गई है। राजतरंगिणी में कुल आठ तरंग है। मानवाधिकार बन्धुआ मजदूरी तथा शोषित वर्ग को अधिकार देने जैसे आज के युग में महत्वपूर्ण समझे जाने वाले मूल्यों को कल्हण ने राजतरंगिणी में प्रभावी ढंग से प्रतिपादित किया है। वह तटस्थ रहकर बिना भेदभाव के हर पहलू का अध्ययन करता है तथा इतिहास को भी मानव कल्याण तथा जीवन के उद्देश्य को समझने का माध्यम समझता है। वह राजाओं के गुण-दोष दोनों का विचार करते हुए किसी भी सफलता का श्रेय समाज में उसी विषय की काफी समय तक कमी की अनूभूति को देता है। वह कहता है सफलता तब मिलती है जब समय अनुकूल हो।

कल्हण संकीर्ण क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर व्यापक हित तथा सत्य को प्राथमिकता देता है। आवश्यकता पड़ने पर कश्मीर में ब्राह्मण ने वेद का पढ़ना, कृषकों ने फसल उगाना छोड़कर तलवार उठाई। यह जानकारी भी राजतरंगिणी में मिलती है। कल्हण के अनुसार कश्मीर में छुआछूत और जातिवाद का भेद न रखकर अंतर्जातीय विवाह साधारण बात थी। राजा चक्रवर्मण (923-933ई.) ने तो एक डूम्ब कन्या से विवाह किया। हिन्दु धर्म को जातिवादी और छुआछूत से ग्रस्त कहकर इसकी आलोचना करने वाले तथा समानता का दावा करने वाले इस्लाम के अनुयायी बनने के लगभग सात सौ वर्षो के बाद भी कश्मीर में डूम्ब और मोची जाति के लोग अछूत माने जाते हैं। कश्मीर में इस जाति के घरों में कोई पानी तक नहीं पीता, शादी-ब्याह करने की बात तो बहुत दूर रही। एक और तथ्य जो कल्हण प्रकट करता है वह है राजा का चुनाव करना। यह पद्धति भारत में काफी समय तक रही है। इसके प्रमाण अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

राजतरंगिणी में आठ तरंग है। प्रथम तरंग में कुल 373 श्लोक हैं, जिसमें गोनंद प्रथम से युद्धिष्ठर तक का 1002 वर्ष का काल खंड है। द्वितीय तरंग में 171 श्लोक हैं तथा यह प्रतापदित्य से समाधमति आर्य राजा तक के काल खंड का वर्णण करता है, जो 192 वर्ष का है। इसी प्रकार 530 श्लोकों वाला तृतीय तरंग मेघवाहन से लेकर वालादित्य तक के 589 वर्ष का हैं। 720 श्लोकों के चतुर्थ खंड में दुलर्भवर्द्धन से उत्पल पीड़ा तक के 254 वर्षो तक का वर्णन है। 855 ई. में अवन्तिवर्मन के काल से लेकर सूर्यवर्मन द्वितीय तक के काल का 483 श्लोंकों वाले पंचम तरंग में हैं। शंकरदेव (939 ई.) से दिद्या तक (980 ई.) के 368 श्लोक, छठे तरंग में, 1003 ई. के उचल से लेकर 1128 ई. में संग्रामराजा से 1089 ई. में हर्ष तक 732 श्लोक सातवें तरंग में तथा 1101 ई. में उच्चल से लेकर 1128 ई. में जयसिंह तक के काल का वर्णन आठवें अर्थात् अंतिम तरंग के 3449 श्लोंकों में उच्चल से लेकर जय सिंह के काल को वर्णित किया गया है। सातवां और आठवां तरंग विस्तृत है, क्योंकि यह कल्हण के जीवन काल के निकटतम समय की जानकारी देने वाला हैं।

६. पराक्रमी ललितादित्य

कश्मीर विद्या के केन्द्र के रुप में विख्यात है। कश्मीर का हिन्दु भी बुद्धिमान तथा विद्यार्जन के लिए जाना जाता हैं। इसी कारण से उसे कश्मीरी पंडित कहते हैं, किन्तु कश्मीर के हिन्दु ने रणभूमि में भी तलवार से ऐसे जौहर दिखाए हैं कि शत्रु का नाम मिट गया। ईरान, तुर्किस्तान तथा भारत के अनके हिस्सों को अपने पांव तले रौंदने वाले सुल्तान महमूद गजनवी को कश्मीर के रणबांकुरों ने दो बार ऐसी धूल चटाई की फिर उसने कभी कश्मीर की तरफ रुख नहीं किया। जब बर्बर तातार सरदार डुलचू ने कश्मीर पर आक्रमण किया और राजा उड्यनदेव भाग गया तब कश्मीर की ही एक वीर कन्या कोटारानी ने युद्ध का संचालन स्वयं करते हुए तलवार से तहलका मचा दिया था। किन्तु साहस और पराक्रम की प्रतिमूर्ति के रुप में सम्राट ललितादित्य का स्थान सर्वोपरि हैं। उनका शासन काल सफल सैनिक अभियानों, उसके अद्भूत युद्ध कौशल, और विश्व विजेता बनने की चाह से पहचाना जा सकता हैं। उसे कश्मीर का नेपोलियन कहा जा सकता है। उसने सैन्य अभियान से पंजाब, कन्नौज, बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक अपने सम्राज्य का विस्तार किया।

आर0 सी0 मजूमदार अपनी पुस्तक "एन. एंशेन्ट इंडिया" में लिखते है, दक्षिण की इन महत्त्वपूर्ण विजयों के बाद ललितादित्य ने कश्मीर की उत्तरी सीमाओं पर स्थित क्षेत्रों पर ध्यान दिया! -- भारत से चीन तक के कारवां मार्ग को नियंत्रित करने वाली कराकोरम पर्वत श्रृंखला के सबसे अगले स्थल तक, उसका सम्राज्य फैला था। इसने दर्दिस्तान और तुर्किस्तान तक को अपने शासन में मिलाया। सम्राट ललितादित्य ने अपने सफल सैनिक अभियानों से कश्मीर का नाम छात्रतेज और पराक्रमी राजाओं की अग्रिम पंक्ति में तो ला खड़ा कर ही दिया, किन्तु उनकी व्यापार कला तथा धार्मिक उत्सवों को प्रोत्साहन देना उनको और भी उंचाई प्रदान करता हैं।

ललितादित्य स्वयं एक सफल लेखक और वीणा वादक थे। उनके समय में व्यापार, चित्रकला, मूर्तिकला तथा धार्मिक उत्सवों के आयोजन के लिए विशेष सुविधाएं प्रदान की गई। महाराजा ललितादित्य का इन सबसे अलग तथा श्रेष्ठ चिरस्मरणीय योगदान सूर्यदेव को समर्पित मार्तण्ड का विशाल मंदिर है जो अन्नंतनाग जिले से करीब आठ किलोमीटर दूरी पर संसार में सबसे उत्तम स्थान पर बनाया गया हैं। यंग हसबैंड के अनुसार "विश्व के महान निर्माण कला नमूनों में मार्तण्ड का बहुत ऊंचा स्थान हैं। बल्कि इसे विश्व के सबसे बढ़िया स्थल पर बनने का गौरव प्राप्त हैं-पॉर्थीनाम ताजमहल, सेंट पीटर्स, एक्सक्यूरियल भवनों से भी उम्दा स्थल पर। हम इसे शेष सभी महान भवनों का प्रतिनिधी या इनके सब गुणों का जोड़ मान सकते हैं। इसी

Ganesh Acharya

से हमें कश्मीरी लोगों की सर्वश्रेष्ठता का ज्ञान हो सकता हैं।"

सैनिक अभियानों के मध्य भी वह निमार्ण कार्य को नहीं भूलता। सम्राट ललितादित्य ने भगवान विष्णु, गोवर्धन(कृष्ण) बुद्ध तथा शिव को समर्पित मन्दिर स्तूप और विहार बनवाएं। दक्षिण के अभियान के दौरान जब वह कन्नौज के आस-पास था तो महाकाल (उज्जैन)और श्रीकृष्ण की नगरी द्वारका के दर्शन की तीव्र अभिलाषा न केवल सम्राट के हृद्रय में हूई, अपितु सारे सैनिकों के हृद्रय में हिलोड़ें लेने लगी, जो स्पष्ट रुप से दर्शाता है कि कश्मीर से लेकर पूरे भारत में एक ही प्रकार की सांस्कृतिक भावना थीं जो आज तक विद्यमान है।

इस दिग्विजयी राजा के अंत के बारे में पं0 कल्हण लिखते हैं- जिस प्रकार सूर्यास्त के बारे में लोग अनेक राय देते है। कोई कहता है कि यह समुद्र के पानी में डूब जाता है, कोई समझता है कि यह अग्नि में समाहित होता है, तो कुछ का मानना है कि यह दुसरे लोक में जाता हैं। उसी प्रकार महान विभूतियों के अंत के बारे में भी उनके जीवन के अनुरुप कहानियां बनती हैं।

सम्राट ललितादित्य के अंत के बारे में निश्चित तो कुछ नहीं कहा जा सकता पर जो ज्ञात हुआ है वह यह है कि नए क्षेत्रों, जिनका किसी को पता नहीं, की खोज में यह पराक्रमी राजा फिर एक बार उत्तर की दिशा में निकल पड़ा। काफी समय राजधानी से दूर रहने के कारण मंत्रियों ने उनके पास दूत भेजा। उस दूत के द्वारा जो संदेश सम्राट ने मंत्री परिषद् को भेजा, वह सारगर्भित संदेश, उनका अंतिम संदेश सिद्ध हुआ। वह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना आज से 1000 वर्ष पूर्व था।

उसने कहा कि- "मेरे वापस लौटने की इच्छा क्यों पालते हो ......? नए कीर्त्तिमान स्थापित करने का निश्चय छोड़कर राजमहल में वापस आकर मैं क्या करुंगा ....? नदी का सीमित लक्ष्य सागर हो सकता हैं परन्तु सच्चे विजेताओं के लिए कोई सीमा नहीं हैं।"

समाज का नेतृत्त्व करने वालों को आगाह करते हूए सम्राट ने इस संदेश में आगे कहा "विघटन से अधिक चिंतित होना चाहिए। शक्तिशाली बनने में बाहरी शत्रु से आन्तरिक विघटन अधिक रुकावट डालता हैं।

जब समाज सुख-सुविधा में मस्त हो जाता है: राजा (नेता) अभिमान में आवश्यक स्थानों की रक्षा करना भूल जाता है: जब कर्मचारी (संगठन के कार्यकर्ता) सीमित दायरे से लिए जाते हैं और रिश्तेदारों को ही विश्वास पात्र माना जाने लगता है तो महान पराक्रमी सम्राट ललितादित्य के अनुसार, विनाश निश्चित हैं। इस प्रकार आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करने के पश्चात महाराज ललितादित्य लुप्त हो गए। आर्दशों (**Role Models**) की खोज में पश्चिम की ओर देखकर भटक रही हमारी युवा पीढ़ी को महाराज ललितादित्य का जीवन सही दिशा दिखा पाऐगा ऐसा विश्वास है।

७. अहिंसा और भूख-हड़ताल

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। नए युग में नई आवश्यकता के अनुसार नए अविष्कार होंते रहते हैं। व्यक्ति जीवन के प्रत्येक अंग को उस अविष्कार में तदनुसार डालता है, कुछ शीघ्रता से, कुछ बिलम्ब से, कुछ उत्साह के साथ तो अनेक अनमने ढ़ंग से। परिवर्तन निश्चित है। इस प्रक्रिया को भारतीय मनीषियों ने बखूबी समझकर परिवर्तन में से अपरिवर्तनीय को पृथक करके शाश्वत सत्य का प्रतिपादन किया है अर्थात वह जो सनातन है, नित्य है! वह सनातन सिद्धांत प्रत्येक युग में उस युग के अनुकूल भाषा एवं वेश-भूषा में अभिव्यक्त होता है।

भारत वर्ष में इन शाश्वत सिद्धांतों को जनमानस के आचरण में डालने के लिए अनगिनत तपस्वियों ने पूरा जीवन लगाया और उसी की परिणति भारतीय संस्कृति है। वह संस्कृति जो मनुष्य के भीतर विद्यमान श्रेष्ठ भावों को उजागर करने पर जोर डालती है तथा इस कार्य में सहायक भी होती है। यही वह संस्कृति है जो नर को नारायण बनाने और आत्मा को परमात्मा में विलीन करने की क्षमता रखती है। यहां एक पापों को दूसरे के सिर मढ़ कर बचाया नहीं जा सकता, किसी एक का अनुयायी बनने से स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता हैं। यहां तो कर्म का सिद्धांत चलाता है जो जैसा करेगा, उसको वैसा ही फल मिलेगा।

भारतीय विचारक यहीं नहीं रुका। उसने तो बहुत ऊपर तक छलांग लगाई जितनी औरों की कल्पना से बाहर है। उसने कहा कि जैसा कर्म करोगे, वैसा फल मिलेगा, इसलिए कर्म वैसा करना जिसका फल अच्छा मिले और यदि नहीं मिला तो भी निराश मत होना, क्योंकि तुम्हारा कर्त्तव्य केवल कर्म करना है फल कि चिंता नहीं। इस विचारधारा की गरिमा को बनाएं रखने के लिए आज संघर्ष करना पड़ रहा है। कुछ ऐसी विचारधाराओं को जो गला फाड़ कर चिल्लाती है कि हम वो वैश्विक मान्यताएं है जो एक मानती हैं जबकि व्यवहार में ऐसा कुछ भी नहीं होता। पुरातन भारतीय विचारधारा को व्यवहार में उतारकर ही हमारे देश में हिंसा और अहिंसा का विचार भी हुआ है। "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय:" की परिकल्पना भी की गई है। यहां व्यापक हित के लिए स्वयं कष्ट उठाना आदर्श बन गया। यह आदर्श देश प्रत्येक क्षेत्र की तरह कश्मीर में भी विद्यमान रहा।

अनशन (भूख हड़ताल) को अपने हितों की रक्षा के लिए शस्त्र के समान प्रयोग करने की प्रथा कश्मीर में काफी समय तक चलती रही। इस परिप्रेक्ष्य में कल्हण ने राजतरंगिणी में अनेक उदाहरण दिए हैं। जब कोई व्यक्ति या समूह अपनी शिकायत दर्ज कराने के लिए, किसी

अप्रिय घटना को विरोध करने या फिर देश की रक्षा के लिए अनशन करते थे, (देवी-देवताओं के समक्ष उपवास रखकर प्रार्थना में तो राजा-महाराजा भी सम्मिलित हो जाते थे) यह एक अंतिम उपाय माना जाता था वंचित तथा शोषित वर्ग द्वारा अपने हितों की रक्षा के लिए। इसके फलस्वरुप वहां शासन की ओर से कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे उन घटनाओं की जांच कराने के लिए।

अनशन करने का वर्णन राजतरंगिणी के तरंग iv श्लोक 82, 99 v के श्लोक 468, vi के श्लोक 25, 336, 343, vii के श्लोक 13, 1088, 1157, 1611 और तरंग viii के श्लोक 51, 110, 658, 707, 768, 808, 939, 2224, 2733, 2739, में है। परन्तु मुस्लिम शासन काल में यह शस्त्र काम नहीं आ सका। संस्कृति के अंतर होने के कारण मुस्लिम शासक वर्ग अनशन द्वारा कष्ट उठाकर या जनता की भावना के दबाव में आकर अपनी नीतियों का निर्धारण नहीं किया करते थे। सभ्यता और सभ्य समाज आर्दशों से अनभिज्ञ यह लोग बर्बरता व यातना देने के नित नए तरीके निकालते रहे है अतः यदि कोई अनशन कर स्वयं कष्ट उठाएं तो उससे उनको क्या फर्क पड़ता। अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में गांधी जी ने इस शस्त्र का फिर से जमकर उपयोग किया था। स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को कष्ट मुक्त करने की इस भावना का भारत में प्राचीन काल से चलन था। कश्मीर भारतीय संस्कृतिक राष्ट्र का एक प्रमुख व सशक्त केन्द्र होने के नाते इस क्षेत्र में भी अग्रसर था।

अल्पसंख्यकों की रक्षा, महिलाओं पर अत्याचार, तथा मानवाधिकारों के मामले में भारत को सीख देने वाले आज के स्वयं-भू चौधरियों को समझना चाहिये कि यह बातें भारत की सांस्कृति में सदियों से रही है। इन क्षेत्रों में तो भारत विश्व का नेतृत्व करने की क्षमता रखता है।

८. क्रांतिकारी विजयराज

राजा हर्ष के निधन के पश्चात् कश्मीर में काफी उथल-पुथल रही। 1101 में उच्चल, 1111 में राधाशंकरराज और सल्हण, 1112 में सुसल, 1120 में भिकसचर, 1121 में सुसल दुबारा फिर 1128 में जयसिंह सिंहासन पर थोड़े-थोड़े समय तक रहें। इसी से पता चलता है कि कश्मीर में इस दौरान विभिन्न प्रकार की शक्तियां एवं प्रभावी गुट आपस में सघर्षरत रहे तथा जो सिंहासन पर आरुढ़ हो जाता, अन्य गुट उसको अस्थिर करने में जुट जाते। शासन की इस होड़ में आम जनता पर अत्याचार बढ़ गए। प्रत्येक गुट अपनी शक्ति तथा प्रभाव बढ़ाने के लिए इस प्रकार के हथकंडे अपना रहे थे। इसी समय चित्रर्थ नामक एक मंत्री जो कर बढ़ाने के लिए जिद्द कर रहा था, के विरुद्ध जनता ने अवन्तिपोरा में भूख-हड़ताल की। इस चित्रर्थ ने राजा की परवाह किए बिना ही हड़ताल कर रहे लोगों पर जुल्म ढाए और अनेक लोगों को बलिदान देना पड़ा। गौशालाओं को चरने के लिए दी गई जमीन वापस ली गई। इस तरह की टक्कर में कई लोगों ने आत्मदाह तक किया। एक गौशाला जलकर राख हो गई। चारों ओर जनता उत्तेजित हो गई। युवकों का आक्रोश बेकाबू हो गया। ऐसे में विजयराजा नामक एक युवक जो पं0 पृथ्वीराज नाम के एक विद्वान ब्राह्मण का पुत्र था, विर्द्याजन करने के पश्चात् कश्मीर से बाहर अपने छोटे भाई के साथ जाने की तैयारी कर रहा था। विजयराज ने इस नरसंहार को देखकर खून के आंसू पीकर अपने छोटे भाई से दोषी व्यक्तियों को दण्डित करने की योजना बनाई। भावना में बहकर नहीं अपितु ठण्डे दिमाग से सोच-विचार करके यह दोंनो भाई आपस में तय करते हैं कि "व्यापक जनहित के लिए यदि एक नीच को समाप्त किया जाए तो उचित होगा।" वे अपने इस निश्चय को बुद्ध द्वारा दैत्य को मारने से तुलना करते हैं। वे तय करते हैं कि जनता पर जुल्म को समाप्त करने के लिए चित्रर्थ का मरना आवश्यक है। कई दिनों के प्रयास के बाद विजयराज को महल में ही सीढ़ियों के पास अवसर मिलता है और वह चित्रर्थ पर खंजर से सिर पर वार करता है। चित्रर्थ बेहोश होकर गिर पड़ता है। उसको मृत समझकर विजयराज उसपर दोबारा वार नहीं करता। चित्रर्थ के सभी साथी भाग खड़े हो जाते है। विजयराज के पास काफी समय और रास्ता मिलता है भागने का। परन्तु भागने के सारे रास्ते खुले होकर भी विजयराज भागता नहीं है। वह चिल्लाता है कि राजा ने चित्रर्थ को मरवाया।" राजा यह सुनकर विजयराज को पकड़वाने का आदेश दे देता है। जब राजा के सैनिक इधर उधर खोजते हुऐ आवाज लगाते है कि चित्रर्थ का कातिल कौन है तो विजयराज निडरता से जवाब देता है कि मैं हूं-- इस दुष्ट को समाप्त करने वाला। सैनिक जब पकड़ने की कोशिश करते हैं तो वह क्रांतिकारी युवक 30

से अधिक सैनिकों को घायल कर देता है। अंत में टांग में खंजर लगने से वह गिर पड़ा और शहीद हो गया। जब उसकी तलाशी ली गई तो उसके बाजू पर भगवत गीता का यह श्लोक लिखा था ।

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे"

यह स्पष्ट करता है कि जब विजयराज घर से चलता है तो उसके मन में इस कार्य का स्थान भगवान द्वारा दुष्टों का संहार करने के बराबर था। चित्रर्थ 6 महीने तक तड़पता रहा और वह बेहद कष्टदायक अंत को प्राप्त हुआ। वीर विजयराज ने सारे संसार में क्रांतिकारी सोच का एक अनुपंम आदेर्श स्थापित किया, रूस और फ्रांस की क्रांति से बहुत पहले और एक दम भिन्न। इस क्रांति में आतंकवाद का सहारा नहीं हैं। बहु-बेटियों और मां-बहनों के लाज भी लुटती नहीं हैं। जेहाद के नाम पर अल्लाह के सिपाहियों द्वारा रची विनाश लीला का भी इसमें कोई स्थान नहीं हैं। यह सीधा और सरल सा एक मंत्र है, "दुष्टों को नष्ट करने में झिझकों नहीं। इसे ईश्वरीय कार्य समझकर यदि स्वयं की आहूति भी देने परे तो बे-गम होकर दे दो।" यह घटना और इसके जैसी अनेक घटनाएं दर्शाती है कि कश्मीर के युवक पढ़ाई के साथ-साथ अश्त्र-शस्त्र को चलाने में, जनहित के लिए दुष्टों की जान लेने में या अपना बलिदान देने में भी अग्रनी रहे है।

1989-90 के पश्चात भी अनेक युवकों ने इस आदर्श को अपनाने का प्रयत्न किया। अनेक सफल भी हुए। आगे भी ऐसे उदाहरण निश्चित रुप से मिलते रहेंगे। आखिर हमें कश्मीर को पुनः प्राप्त करना है। वहां पर अपनी पांच हजार वर्ष पुरानी गौरवपूर्ण संस्कृति को फिर से स्थापित करना है। विदेशी अमानवीय संस्कृति में जकड़े हुए अपने रक्त बंधुओं को मुक्त जो करना है।

९. शारदा माता का मंदिर

शारदा गांव में स्थित **शारदा बल या शारदा माता का मंदिर** प्राचीन भारत के प्रसिद्ध तीर्थ स्थलों में एक है। आज यह मंदिर पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के भू-भाग में प्राचीन हिन्दु संस्कृति के स्मृति चिन्ह् के रुप में विद्यमान है। देश विभाजन के पूर्व हर वर्ष भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी के दिन यहां वार्षिक उत्सव मनाया जाता था और हजारों की संख्या में भक्त-जन अखंड भारत वर्ष के कोने-कोने से देवी दर्शन के हेतु आते थे। इस दिन हरमुकुट गंगा (गंगा बल) पर भी वार्षिक धार्मिक पर्व मनाया जाता है। इसलिए भादों की शुक्ल पक्ष अष्टमी को गंगाष्टमी (गंगा आऽठम) तथा शारदा अष्टमी (शारदा आऽठम) कहते है।

कश्मीर में कुपवाड़ा से लगभग डेढ़ किलोमीटर की दुरी पर दो गांव हिन्दु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से प्रसिद्ध हैं- टिक्कर एवं गुशी। टिक्कर से लगभग चालीस किलोमीटर की दूरी पर शारदा गांव किशन गंगा घाटी में पड़ता है। टिक्कर से यहां पहुंचने के लिए दो मार्ग हैं। यात्री एवं भक्तजन **टिक्कर** से मुरहामा, **मुहरामा** से **जुमगण्ड** और जुमकण्ड से **शारदा** पहुंचते थे। टिक्कर से शारदा जाने का एक और मार्ग भी है जो टिक्कर से **बटपोरा**, और बटपोरा से **गुथामडूर**, गुथामडूर से **थैयन** और थैयन से शारदा जाता था। शारदा श्रीनगर से 130 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और मुजफ्फराबाद (अब पाक अधिकृत कश्मीर में) से शारदा तक की दूरी लगभग 140 किलोमीटर हैं। यह गांव जिला मुजफ्फराबाद के तहसील अट्टमुकाम में पड़ता है। शारदा माता का मंदिर किशन गंगा (दरिया-ए-नीलम) के बांए किनारे पर वहां स्थित है जहां मधुमती नदी का मिलन किशन गंगा के साथ होता है। भादों की अष्टमी को यहां पितृश्राद्ध भी होता था और मृत परिजनों की अस्थियों का विसर्जन भी।

संस्कृत में **शारदा** शब्द सरस्वती और दुर्गा दोनों का वाचक है। एक प्रकार की वीणा (वाद्य यंत्र) भी शारदा कहलाती है। सरस्वती तो ज्ञान, विवेक और विद्या की देवी है और दुर्गा सती और पार्वती का रुप है। विश्वास यह है कि पार्वती ने ही देवताओं की प्रार्थना पर असुरों के संहार हेतु दुर्गा का धारण किया। प्राचीन काल से ही कश्मीर ज्ञान, विद्या, विवेक एवं शास्त्र अध्ययन का केंद्र रहा है। यही कारण हे कि कश्मीर को शारदापीठ, शारदा भूमि या शारदा नगरी तक कहा गया है। कश्मीर वासियों ने शारदा को सरस्वती अर्थात् विद्या की देवी के रूप में ही स्वीकारा।

इस तीर्थ स्थल के साथ कई पौराणिक कथाएं जुड़ी हैं जिनमें तीन कथाएं विशेष रुप से

महत्वपूर्ण हैं।
(अ) लोगों को इस बात पर विश्वास है कि समुद्र मंथन के बाद अमृत कलश से अमृत पान करके शेष बचा हुआ अमृत, कलश के साथ माता शारदा ने ग्रहण किया और उत्तर खंड के शारदा नामक गांव में पहुंच कर अमृत कलश पर समतल शिला धारण करके उसे ढक लिया। यही समतल शिला मां शारदा का प्रकट रुप माना जाता है। हिन्दु राज्यकाल में दसवीं शताब्दी के आस-पास यहां शिला देवी के मंदिर का निमार्ण हुआ है।
(ब) एक दिन महर्षि वशिष्ठ ने अपनी पत्नी से पुत्रवती होने के हेतु माघ मास में पूर्णमासी तक उपवास करके भगवान शिव की उपासना करने का सुझाव दिया। यह बात किसी तरह निम्न जाति के व्यक्ति ने सुनी जो स्वयं पुत्र-प्राप्ति के लिए व्यग्र था। उसने भी अपने पत्नी को उपवास रखकर शिवोपासना का सुझाव दिया। उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई और एक पुत्र-रत्न ने उनके घर में जन्म लिया जिसका नाम शांडलि रखा गया। कहते है कि ब्राह्मणों ने उसका यज्ञोपवित्र संस्कार करने से इंकार कर दिया और महर्षि वशिष्ठ के कहने पर वे भारत के उत्तरखंड में स्थित शारदा माता के दर्शनार्थ चल पड़े। कुपवाड़ा से गुशी पहुंचे जहां उन्हें अनाहुतनाद सुनाई दिया और वे बटपोरा के मार्ग से गुथमडूर से होकर थैयन पहुंचे। शारदा के निकट जल-कुंड में स्नान करने से उनका आधा शरीर सोने का हो गया और माता का दर्शन पाकर सिद्ध महात्मा शांडलि मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए । मां के एक स्तुति मंत्र में इसका उल्लेख है:
श्री श्री शैल स्थिता या प्रसुहित वंदना
पार्वती शूल हस्ता,
वह्नि सुर्येन्दुनेत्रा, त्रिभुवन जननी षड्भुजा सर्वशक्तिः
शाण्डिल्ये नोप वीता, जयति भगवती भक्ति गम्यानुयातां।
सा नः सिंहासनस्था ह्यभिमत फलदा शारदा शं करोतु।।
(इ) कहते है कि कश्मीर के एक हिन्दु राजा महेश कर्ण (मनकन) ने यहां एक भव्य मंदिर का निमार्ण किया। महेश कर्ण के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि उनके दोनों कान भैंस के कानों के समान थे। इस कारण वे मन ही मन अपने भद्दे रुप पर, लज्जित थे। नाई के द्वारा उसके महिषी कानों का समाचार जनता तक पहुंचा और इस कारण वे और अधिक व्याकूल हो उठे। कहते है, एक रात स्वप्न में उन्हें किसी दिव्य शक्ति ने शारदा पहुंचने का परामर्श दिया। वे माता शारदा के शरण में आए और उनके दोनों कान मनुष्य-कर्ण में बदल गए इसलिए कश्मीरी में यह कहावत प्रसिद्ध है कि:
'मनकन राजस मोशे कन
शारदायि यलि वाति तेलि बलहन।'

इस प्रकार शारदा ऋद्धि (संपन्नता, गौरव, सफलता) एवं सिद्धि प्राप्ति का देवी गृह(देवी मंदिर) माना जाता है। जगद गुरु शंकराचार्य को भी माता के दर्शन यहां हुए थे। कश्मीर के प्रसिद्ध मुस्लिम शासक सुलतान जैन-उल-आब्दीन (1420-1470 ई.) भी यहां सफलता का वरदान पाने हेतु दर्शनार्थ आए थे। डोगरा शासन काल में वह तीर्थ प्रर्याप्त प्रसिद्ध हुआ। मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था सरकार ने अपने अधिकार में ली थी और इस देवी स्थान के रख-रखाव के लिए सारा खर्चा सरकार की ओर से होता था।

प्रसिद्ध फारसी विद्वान अलबरोनी (alberuni) जिन्हें मुहम्मद गजनी भारत अपने साथ लाए थे और जो भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में कई वर्षों तक रहे और जिनका देहांत 1048 ई. में 75 वर्ष की अवस्था में हुआ, ने अपनी पुस्तक **'तारीख-ए-हिन्द'** में लिखा है कि भारत में हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थों में मुलतान के प्रसिद्ध **सूर्य मंदिर** के बाद **शारदा मंदिर** का नाम आता है। स्पष्ट है कि शारदा संपूर्ण भारत के हिन्दुओं के प्राचीनतम तीर्थ स्थलों में से एक है।

प्रसिद्ध अंग्रेज शोधकर्त्ता सर एम. ए. स्टेन, जिन्होंने कल्हण पंडित की 'राजतरंगिणी' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया और जो दो भागों में chronicles of the King of Kashmir शीर्षक से सन् 1900 ई. में प्रकाशित हुआ, का मानना है कि शारदा मंदिर से पूर्व दिशा में लगभग एक मील की दूरी पर एक समतल भू-खंड है जहां कुछ ऐतिहासिक भग्नावशेष भी मिले है, वहीं अध्ययन-अध्यापन का प्रसिद्ध विद्या केन्द्र हिन्दु राज्य काल में विद्यमान था जिसे कुछ लोग **शारदा विश्वविद्यालय** कहते है। यहां वेदी की विधिवत शिक्षा देने की पूर्ण व्यवस्था थी। इस महान विद्यापीठ में गुरुकुल परंपरा का दृढ़ता से पालन किया जाता था। देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से विद्वान वेद, षट्दर्शन, तर्कशास्त्र, ज्योतिष विद्या एवं शैवमत का अध्ययन करने हेतु यहां आते थे और निश्चित अवधि तक रह कर विद्या लाभ प्राप्त करते थे। बंगाल के गौड़ ब्राह्मण एवं काशी के यशस्वी ब्राह्मण विद्या प्राप्ति एवं शास्त्र अध्ययन के लिए यहां पहुंचते थे। पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक समाप्त करने पर प्रत्येक शिक्षार्थी को अपनी योग्यता का प्रमाण देना होता था तथा सफल स्नातकों को विशारद की डिग्री प्रदान की जाती थी और इस हेतु दीक्षांत समारोह प्रतिवर्ष गौरी तृतीया (माघ शुक्ल पक्ष तृतिया) को सम्पन्न होता था। देश विभाजन के समय भी मंदिर परिसर में एक भव्य पुस्तकालय एवं कई गोष्ठी-कक्ष मौजूद थे। पुस्तकालय में वेद, षट्दर्शन एवं शिवमत से संबंधित अलभ्य पुस्तकें एवं शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपियां सुरक्षित थी। एक पूर्व निश्चित षड्यंत्र के अंतर्गत शताब्दियों से संचित इस ज्ञान भण्डार को नष्ट किया गया। इस प्रकार कश्मीर के प्राचीन-कालीन हिन्दू इतिहास के सैकड़ों अनमोल रहस्यों से वंचित हो गए।

शिला देवी के परिसर में प्रवाहित जल-स्रोत के सम्मुख काली चट्टान पर मां सरस्वती की प्रतिमा उत्कीर्ण है जो हिन्दु राज्य काल के भव्य मुर्ति शिल्प का ऐतिहासिक साक्ष्य होने के

साथ-साथ शारदा भूमि की बौद्धिक सम्पदा-तत्व ज्ञान, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार ज्ञान, तर्क एवं विवेक पूर्ण वाणी का प्रतीक चिन्ह् भी है।
मंदिर के चारों ओर ग्यारह फुट ऊंची दीवार है जो किशन गंगा के किनारे से और भी अधिक ऊंची दिखाई पड़ती देती है क्योंकि मंदिर तनिक ऊंचाई पर एक टेकरी पर स्थित है। मंदिर परिसर के बीच में मुख्य मंदिर स्थित है जिसका वास्तु-शिल्प कश्मीर के अन्य मंदिरों के समान है। मंदिर का मुख्यद्वार पश्चिम दिशा में है और भीतर प्रवेश हेतु सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। मंदिर के भीतर एक समतल सपाट शिला सात फुट लंबी छः फुट चौड़ी और छः इंच मोटी है। यही शिला उस अमृत कुंड को ढक रही है जिसमें माता शारदा का वास है। यात्री यहां पहुंच कर इसी शिला को पूजते है और शिला रुप मां शारदा के दर्शन पाकर संतुष्ट होते है। नदी घाट से मंदिर तक चढ़ने हेतु पक्की सीढ़ी है जिसमें 64 पाए है।
मंदिर षटकोणाकार है जो मां शारदा की छः अलौकिक शक्तियों, षट् भुजाओं अथवा मां की निम्नलिखित छः विशेषताओं का द्योतक है।
(i) मां सर्वव्यापक है।
(ii) मां अपने आप में परिपूर्ण है।
(iii) मां चेतन प्रज्ञा का व्यक्त रुप है।
(iv) मां सर्वशक्ति सम्पन्न है।
(v) मां असीम दिव्य शक्ति का अमृत स्त्रोत है।
(vi) मां सर्वसिद्धिदात्री है।

देश विभाजन के पश्चात् इस पावन तीर्थ स्थल की क्या दशा रही है, कुछ ज्ञात नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि इच्छुक भक्त जनों को भविष्य में यहां यात्रा के हेतु जाने की अनुमति मिल जाए विशेष कर शारदाष्टमी के दिन ताकि इस सांस्कृतिक विरासत पर गर्व करते हुए हम देवी माँ के चरणों पर श्रद्धा के सुमन अर्पित कर सकें।
हर वर्ष शारदा मंदिर में उत्सव मनाया जाए और भक्तजन माँ के मंदिर की दहलीज पर मस्तक नवा सकें और माँ के पवित्र मंदिर का जीर्णोद्धार हो इसके लिए जम्मू-कश्मीर विचार मंच ने एक आंदोलन चलाने का निश्चय किया है। इस आंदोलन की शुरुआत हो चुकी है।

नमस्ते शारदे देवि कश्मीर पुरवासिनी।
त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यां ज्ञानञ्च देहिमे।।

(कोशुर समाचार से साभार)

१०. शिव की परम् प्रिय नगरी-कश्मीर (काशमिरा)

कश्मीर नगरी शिव की आदिकाल से ही प्रिय नगरी रही है। यह स्थान उनके कर-कमलों की देन है। इस नगरी की स्थापना उस परम् पिता परमेश्वर भगवान भोले शिव शंकर के चरण कमलों की रज के दाने से की हुई है। "जलोद्भव के संहार हेतु जब प्रभु केशव जल से भरी नगरी में पहुंचे तो अनेक देवता आदि इस युद्ध को देखने पधारे। भगवान शिव भी इस आलौकिक लीला को देखने पहुंचे। जलोद्भव ने जब देखा की हरि लीला से जल कम हो रहा है, अर्थात उसका संहार निश्चित सा है तो उसने माया से पूरे क्षेत्र में अन्धकार कर दिया। शिव ने पलक झपकते ही एक हाथ में चन्द्रमा और दुसरे में सूर्य को लेकर क्षेत्र को प्रकाशमान कर दिया जिससें केशव को जलोद्भव का वध करने में कोई भी कठिनाई नहीं हुई" (नीलमत पुराण175-180)। उस समय जो भी देवता आदि जिस स्थान पर खड़े इस अद्भुत दृश्य को देख रहे थे, उन्होंने उन स्थानों पर अपने नामों से निवास बनाए जिनमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शंभु के नाम भी कुछ पहाड़ी चोटियों के नाम भी मिले। (नीलमत पुराण 181, 192, 193)

"विष्णु तथा रुद्र ने कमल से जन्में ब्रह्मा जी के संग अपने-अपने निवास स्थानों का निमार्ण किया। यह देश (कश्मीर) सबसे पुण्य स्थल तथा पवित्र बना।
[" देशं सपुण्य परमं पवित्रम्] (नीलमत-194)"
इसी समय कश्यप जी के विनय पर मानव को इस स्थान पर रहने का वर विष्णु ने दिया।
" क से अर्थ है प्रजापति तथा कश्यप भी प्रजापति है अतः इस देश (स्थान) का नाम कशमिरा होगा।" (नीलमत पुराण 226)
" चुंकि कशमिरा वही है जो उमा है-विशोका के नाम से विख्यात है, स्त्री रुप में वृद्धतीर्थ में सदा विराजमान रहेंगी"(228-229)।
"कशमिरा को इस प्रकार बसा कर कश्यप ने प्रसन्न होकर शंकर की पूजा किए तथा देवी उमा को इस नगरी को पवित्र करने हेतु नदी के रुप में पापियों के पाप का नाश करने हेतु वितस्ता नाम से विनय कर प्रकट कराया" (237-238)।
कश्मीर के नीलमत पुराण में अंकित इस वर्णन का तात्पर्य यह है कि भगवान शंकर, विष्णु, तथा ब्रह्माजी ओंकार रुपी प्रभु भू-लोक में स्वयं न केवल अपने अपने देव रुप में पधारे, यहां लीला भी कर गये तथा इस नगरी में अपना स्थाई निवास बना लिए। यह नगरी शिव (शंकर) से इतनी जुड़ी है जितनी देह से आत्मा। यह एक परंपरा नहीं रही है कि कश्मीर वासी भैरव गण आदि के रुप में बहुत अधि क पूजते हैं। नीलमत पूराण का विस्तार से अध्ययन करें तो इन भैरवों गणों तथा देवी देवताओं की उत्त्पति

एवं स्थान के वर्णन से परिचित आदि की उत्पति का मूल कारण सदा ही भगवान शंकर की काश्मीर वासियों की सुरक्षा, उनके उत्थान एवं लोक कल्याण की भावना रही है। चाहे वह नन्दकीशवर (सुंब्ल, सीर निवासी) (सुदर नदी के तट पर शायद वर्तमान सदरकूट 1-1167), मंगलराज है। ये वारामुला निवासी वेताल हो, श्री नगर में भैरवनाथ (साव), चक्रीश्वर, जीठयार या कूटीत्रीघ (वारामूला), सब भगवान शंकर के परम् वरदान के रुप में कश्मीर नगरी में उनके परम श्रद्धालु भक्तों की रक्षा उन्हें धन-धान्य से सम्पन्न बनाने हेतु ही विराजमान है। इसमें यह बात पूर्णरुप से सिद्ध होती है कि शिव का काश्मीर से संबंध अनूठा और शेष संसार से भिन्न (सर्वोत्तम) है। यही कारण है हमारी पूजा की विधि हमारी उनमें आस्था तथा श्रद्धा अर्थात पूर्ण भक्ति ही भिन्न है। इसमें अपवाद संभवत उन परिवारों या उनके वंशजों का हो सकता है जो पहले निष्कासन पर कश्मीर छोड़ गए थे, परन्तु कुछ समय बाद पुनः लौट आए। निष्कासन के अवधि में उन्होंने दूसरे प्रांतो (देश, नगरों) से स्थानीय विधि को देश, काल अनुसार ग्रहण किया हो। इस समय भी देश तथा कालानुसार सं. 1990 के निष्कासन पर संभवतः अपनी परम्परओं और मान्यताओं में नए ही दृष्टिकोण अपनाएं है। इसलिए आज सांस्कृति (कश्मीरी मूल्यों) की रक्षा और स्थाईपन की चिन्ता जागृत है।

हमें अपनी माटी (मिट्टी) याद आती है क्या केवल इसलिए कि हमारी संपत्ति वहीं रह गई है या फिर कि वह जलवायु जिसमें हम पले बड़े हमें नहीं मिल रही है। यदि ऐसा नहीं तो कितनों को हममें वह परम्परायें, वह मान्यताएं, वह हमारे जीने का ढ़ंग वह जड़े याद आती है। उन जड़ों में बसे उस शिव प्रेम को चाहे भैरव के रूप में चाहे शक्ति के रूप में (सारिका, जयेष्ठा, ज्वालाजी आदि) कितनी आत्माओं को विराह बेदी पर बलि हेतु लेता रहता है? कचोटता है? विचलित करता है?

आप फिर शिव में लीन हो जायें उनको सर्वस्व समर्पित करें और आशीष लें जिससे हमारे समस्त कष्टों का मोचन हो, हमारा उद्धार हो।

(महाराज कृष्ण सफाया)

११. जम्मू कश्मीर विचार मंच

कश्मीर समस्या का सबसे प्रमुख कारण है झूठ की पुलिन्दा खड़ा करके सत्य को घाटी के अन्दर दफन करना है। प्रारम्भ से ही यहां के बारे में असत्य का प्रचार इतने प्रभावी ढंग से किया गया कि सच्चाई प्रकट होते-होते रुसवा हो गई। उस पर किसी ने विश्वास ही नहीं किया।

सत्ता के लालच ने देश का विभाजन करवा चुकी कांग्रेस स्वतंत्र भारत में भी हिन्दु-मुस्लिम भाई चारा और एक राष्ट्रवाद का तोता रटंत नारा लगाती रही। मुसलमानों को उनके जनसंख्या के अनुपात से अधिक जमीन देकर पाकिस्तान का निमार्ण किया गया। जिन मुसलमानों ने देश की विभाजन की मांग की थी उनको पाकिस्तान भेजने के स्थान पर यहां रोका गया और अपने लिए एक थोक वोट बैंक तैयार किया गया।

ऐसे में देश के बटवारे और उसके साथ हुए दंगों से उत्तेजित जनता को भ्रमित करने के लिए ततकालीन सरकार ने जम्मू-कश्मीर को हिन्दु-मुस्लिम एकता के नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया।

महाराजा हरिसिंह द्वारा किए गए विलय को कम, शेख अब्दुल्ला और उसकी नेशनल कांग्रेस द्वारा अपने कारणों से किए गये पाक विरोध को बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित किया गया। शेख को प्रशासन भेंट किया गया। उसके हिन्दु विरोधी तथा राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को अनदेखा करके शेख को महान देशभक्त बनाया गया। यह क्रम आज तक जारी है।

आज स्वतंत्रता के प्राप्ति और जम्मू-कश्मीर के भारत में विलय के 50 वर्ष पश्चात भी कश्मीर घाटी में मुस्लिम समुदाय में खुलकर भारत के पक्ष में बोलने वालों को खोजना पड़ता है।

केन्द्र सरकार द्वारा जम्मू-कश्मीर पर सबसे अधिक खर्च होता है। इस प्रदेश ने हमारे देश के सबसे अधिक संशाधन सोख लिए। यहां पर अन्य किसी भी क्षेत्र से अधिक संख्या में सैनिक शहीद होते है। इस प्रदेश पर भारत का संविधान भी पूरा लागू नहीं होता। भारत का राष्ट्रपति हो या प्रधानमंत्री इस प्रदेश में एक इंच भूमि खरीदने का अधिकार किसी को भी नहीं है। जबकि इस प्रदेश के लोग भारत के किसी भी कोने में संपति अंर्जित कर सकते है, तथा किसी भी उच्चे पद को प्राप्त कर सकते है।

इन अर्न्तविरोधों के बारे में देश विदेश में जानकारी देना, कश्मीर में चल रहे राष्ट्र विरोधी गतिविधियों तथा अलगाववादी तत्वों को उजागर करने का कार्य जम्मू-कश्मीर विचार

मंच ने अपने हाथ में लिया हैं। विचार मंच का विधिवत् गठन तो 1994 में हुआ। किन्तु इसकी गतिविधियां एवं एक द्विमासिक पत्रिका 1990 से ही चल रही है।

सशस्त्र आतंकवाद के कारण जब घाटी में वहां के मूल निवासी हिन्दुओं का निष्कासन हुआ और यह प्रदेश लगभग भारत से अलग होने की स्थिति में आ गया। उस समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की प्रेरणा से, प्रदेश की राष्ट्रवादी जनता ने देश विदेश में दौड़ लगाकर जम्मू कश्मीर के बारे में सत्य का प्रचार किया।

Now India Speaks के थीम से विचार गोष्ठियां, पत्रकार परिषद् और जनसभायें हुई। इन प्रयत्नों को और सुचारु व व्यवस्थित रुप देने का परिणाम जम्मू-कश्मीर विचार मंच है।

मंच ने नवम्बर में दिल्ली में एक दो दिवसीय प्रतिनिधि सम्मेलन का भी आयोजन किया। इसके साथ जम्मू-कश्मीर की जनता में सांस्कृतिक पुर्नजागरण तथा सामाजिक पुर्नरचना के कार्य की ओर भी मंच ने ध्यान दिया। महाशिवरात्रि के पर्व को सामूहिक रुप से मनाने का निर्णय इसका एक सशक्त उदाहरण है जो प्रतिवर्ष मनाया जा रहा है ओर काफी प्रसिद्ध हो रहा है।

मंच ने जो एक और महत्वपूर्ण कार्य अपने हाथ में लेने का निर्णय लिया है, वह है पाक अधिकृत कश्मीर स्थित माँ शारदा की पुरातन मंदिर की मुक्ति एवं जीर्णोद्धार का। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन दिनों हस्ताक्षर अभियान चल रहा हैं।

मंच समय समय पर जम्मू-कश्मीर से जुड़े अनेक प्रश्नों पर विचार गोष्ठियों का आयोजन करता रहता है तथा लोकतंत्र के नियमानुरुप, संवाद के माध्यम से जनमत को इस समस्या के समाधान में सहभागी बनाने व नीतिनिर्धासकों को राष्ट्रीय दृष्टि कोण से अवगत कराने का प्रयत्न करता रहता है।

मंच **Voice of Jammu Kashmir** के नाम से एक द्विमासिक पत्रिका का प्रकाशन करता है जो देश विदेश में प्रमुख लोगों को नियमित भेजी जाती है।